वे लोग जब गांव पहुंचे तो मुसहर टोली में आग लगी हुई थी और तमाम बच्चे, औरतें, मर्द चिल्लाते हुए गांव छोड़ कर भाग रहे थे। नगीना राम और भैरव तिरपाठी बहुत ऊंचे तूफान को सीने के अंदर रोक कर गांव के किनारे पर रूके हुए थे।

* ———————— *

मधुकर सिंह

जन्म 2 जनवरी 1934। आजादी के बाद की मानसिकता और सामाजिक संदर्भों को बड़ी गहराई से देखा और परखा है। पुराने और नए मूल्यों तथा अर्थगत और जातिगत परम्पराओं के टकराव को संपूर्ण मानवीय संवेदनाओं के साथ अपनी कहानियों का आधार बनाया है। अनेक कहानी संग्रह एवं उपन्यास प्रकाशित पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त।

जनाजा

शानी

फिर अब क्या करें?

एक पल बाद रमन फिर वहीं सवाल पूछ बैठा जिसका शंकर दत्त को बराबर डर बना हुआ था। फिर वह उनकी ओर ऐसी आंखों में देखने लगा, जैसे एकाएक उन्हें गलत नुक्ते पर पकड़ लेना चाहता हो।

सहम कर वह दूसरी ओर देखने लगे। साउथ के उन दूसरे ब्लाकों की तरफ, जहां यूक्लिप्टिस के छोटे-छोटे पेड़ करीने से लगे हुए थे और दिसंबर की खुशगवार धूप जिनकी किरणें केले के पेड़ों पर चिलचिला रही थी। हवा ऊपर किस तरह पारदर्शी हो कर काँपती है, इसका एहसास जैसे उन्हें पहली बार हुआ। स्पष्ट ही इस इतनी बड़ी आकस्मिक दुर्घटना का उधर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। लोग अपने-अपने बीवी-बच्चों और दोस्तों के साथ छुट्टी के दिन की आलस-भरी और नार्मल ज़िदगी गुजार रहे थे।

-क्वार्टर नं. तो बता दिया था? अचानक शंकरदत्त ने कुछ याद कर पूछा

-हां, रमन बोला-वैसे भी कुरैशी को पता है।

दोनो अलग और दूर खड़े थे। रिजवी के क्वार्टर से ही नहीं उसके सहन, सामने वाले आहाते और उस जगह से भी दूर, जहां दो-दो, चार-चार के ग्रुप में खासी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। कुछ देर पहले शंकरदत्त भी उन्हीं में से एक थे। न चाहते हुए भी बहुत-सी बातों के हिस्सेदार लेकिन रमन ने उन्हें सहसा

उबार लिया था। कुरैशी ने यहां से लौट कर रमन ने उन्हें दूर से ही इशारा कर दिया था और वह निकल आये थे।

–दत्तजी, एक लंबे पल के बाद रमन ने अधीरतापूर्वक कहा–साढ़े ग्यारह वैसे ही बज रहे हैं। अगर अभी से इतनी देर हुई तो जनाजा उठने में शाम हो जायेगी। कालोनी वाले कब तक भूखे-प्यासे बैठे रहेंगे? नागी साहब और जोशीजी बार-बार कह रहे हैं कि भई, जो कुछ करना है, जल्दी करो...

यह कोई नयी बात नहीं थी। रमन की गैरहाजिरी के दौरान जब शंकरदत्त भीड़ में शामिल थे, तो इस बात के टोंचे उन्हें कई बार लगे थे। दलीलें वे ही थीं लेकिन इस वक्त रमन के मुंह से वही बातें शीशे की तरह धारदार लगीं।

–जोशी खुद ही कुछ क्यों नहीं करता ? वह पूरी तरह फट कर चीखना चाहते थे लेकिन तत्काल ही मौके की नजाकत सामने आ गयी।

–रूक जाओ, ऊपरी गंभीरता के साथ वह संयत स्वर में बोले - थोड़ी देर और देख लेते हैं। मुमकिन है कि स्टेशन से कोई खबर आती हो। मुमकिन है कि कुरैशी दफ्तर से होता हुआ सचमुच आ जाये या.....

पर आगे बोला नहीं गया। चाहे रमन की घूरती हुई दृष्टि हो या उनके अपने ही आत्मविश्वास की कमी, वह स्वयं चुप हो गये। स्टेशन से क्या खबर आनी है, वह भी जानते थे और दूसरे लोग भी कि वहां से निन्यानवे फीसदी निराशा हाथ लगाने वाली है। लेकिन फिर दूसरा उपाय? क्या वह सचमुच स्टेशन की खबर के लिए ही रूके हुए हैं?

–जरा इन्क्वारी को तो फोन कर देखो, अचानक उत्साहित हो कर उन्होंने कहा।

–वह मैं कर आया हूं।

–अच्छा! फिर?

–जी.टी. सिर्फ दस मिनट लेट थी, रमन ने बताया–और इन्क्वारी ने कहा कि गाड़ी ठीक दस सत्रह को भोपाल छोड़ चुकी है।

दस सत्रह अर्थात् सिर्फ आधे घंटे की मोहलत! जब स्टेशन के लिए किसी आदमी को दौड़ाया जा रहा था उस वक्त पौने दस जब रहे थे। यों उस दुर्घटना की वहशत उस वक्त भी सब पर तारी थी। तो भी कालोनी के हर आदमी ने इस बात पर जोर दिया था कि किसी-न-किसी को स्टेशन जरूर भेजना चाहिए। कौन जानता है कि किस्मत से गाड़ी मिल जाये और रिजवी के बदनसीब बीवी-बच्चे आखिरी दफा कम-से-कम मुंह ही देख लें...

शंकरदत्त ने घड़ी देखी। स्टेशन से कोई खबर आये या न आये इस बात पर धीरे-धीरे उन्हें भी यकीन होता जा रहा था कि कुरैशी गच्चा दे गया। आना होता तो वह पहली खबर पहुंचते ही कभी का आ चुका होता। लेकिन मन जैसे पूरी तरह मानता नहीं था। लगता था, कुछ भी सही, कुरैशी आखिर है तो मुसलमान ही आपनी बिरादरी वाले आदमी के लिए कहीं तो कुछ दर्द होगा...

–दत्तजी! इस बार रमन का स्वर कुछ बदला हुआ था - मेरे खयाल से कुरैशी का रास्ता देखना बेकार है। वह नहीं आने का।

–उसने पहले क्या कहा था?

–कहता क्या, रमन बोला-वहीं, जो ऐसे मौके पर सभी कहते हैं।

–फिर भी?

–सुन कर पहले तो वह भौंचक रह गया था, फिर अरबी की कोई आयत पढ़ता हुआ बोला था कि आप चलिए, मैं अभी हाजिर होता हूं मैंने कहा न, मुझे तो तभी शक हुआ था। दूसरी बार इसीलिए मैं जाना नहीं चाहता था। सोचिए तो सही, क्या ऐसे कामों में भी तकाजे की जरूरत पड़ती है?

असल में रमन को दोनों मरतबा शंकरदत्त ने ही भिजवाया था। जैसे ही उस दुर्घटना ही बहशत कम हुई थी और आगे का ध्यान आया था, उन्होंने कुरैशी

को बुलाने के लिए रमन को दौड़ा दिया था। पहली बार खबर आयी थी कि आ रहे हैं। घंटे भर प्रतीक्षा करने के बाद फिर रमन गया, तो अब यह खबर ले कर आया है कि कुरैशी घर पर ही नहीं मिला। उसे बच्चों से कहलवा दिया गया कि एकाएक साहब का चपरासी बुलाने आ गया था, सो वह यह कह कर चले गये हैं कि उधर ही से होते हुए मैयत में शामिल हो जायेंगे।

शामिल? शंकरदत्त के मुंह में बहुत कुछ आ कर अटक गया था लेकिन उन्होंने होंठों को कस लिया। महज शामिल होने वाले और तमाशबीनों की यहाँ कौन कमी है! जमा तो है आधी-की-आधी कालोनी...

-अरे भाई, आखिर क्या तय हुआ?

सहसा सबसे ऊंची आवाज में पुकार कर जोशी ने पूछा। जैसे तय करने-न-करने की जवाबदारी अकेले शंकरदत्त की ही हो और अब तक कुछ न कर सकने के लिए उन्हें कठघरे में खड़ा किया जा रहा हो।

यह आदमी कितना कमीना और लंपट है! जोशी का चुकंदरनुमा चेहरा देखते ही शंकरदत्त की बायीं कनपटी की नस तड़पी और निचला होंठ गुस्से में कांप कर लटक आया। साला, हर जरूरी गैर-जरूरीजगह अपनी गंदी नाक घुसेड़ता है।

-कुरैशी घर पर नहीं है।

रमन ने बहुत संयत स्वर में जैसे सबको एक साथ बताया और बिल्कुल ठंड़े ढंग से जा कर एक ओर खड़ा हो गया। भीड़ में एक क्षण के लिए सकता पड़ गया।

-छुट्टी के दिन भी दफ्तर? किसी ने धीरे से एक-एक जुमला उछाला।

-दफ्तर नहीं, साहब! सप्रा ने कहा।

-साहब? तनखी वाले ने साश्चर्य कहा-साहब कि मेम साहब।

-अमां मेम साहब ही नहीं, मेमसाहब का पेटीकोट और पेटीकोट ही नहीं, उसका कमरबंद.....

कुरैशी के पीछे अकसर यह बात कही जाती थी कि वह साहब का मुंहलगा और पिट्ठू है कि छुट्टी के दिन बिला नागा वह बंगले पर हाजिरी देता है कि बच्चों की फ्राक से लेकर मेमसाहब के सेनिटरी टॉवेल्स तक का भार कुरैशी ने ले रखा है।

-अजी मारो गोली कुरैशी को, सहसा जोशी ने तैश मे आकर कहा-क्या साले कुरैशी के बिना रिजवी की लाश नहीं उठ सकती? क्यों दत्तजी?

-उठ क्यों नहीं सकती, जोशी ने कहा-आप ही आगे बढ़िए और उठाइए लाश को। भला इसमें मुझे या किसी को क्या एतराज हो सकता है। हम लोग तो महज इसलिए झिझक रहे थे कि वह दूसरी बिरादरी का मामला है.....

और फिर भीड़ में खामोशी छा गयी। थोड़ी देर आपस में खुसर-पुसर होती रही। हर कोई यह याद करने की कोशिश कर रहा था कि कालोनी में और कौन-कौन से मुसलमान घर हैं.....

-आबकारी विभाग के कुदरतुल्ला साहब?

-अफसर है, न हिंदू, न मुसलमान!

- पक्का मुसलमान और परहेजगार किस्म का आदमी। जो ईमान वाले नहीं, उन्हें इनसान ही नहीं समझता।

-अली साहब?

-नंबरी स्नॉब! इस कदर कम-जर्फ है कि.....

-और अंसारी? किसी ने याद दिलाया।

-वही होता, तो फिर रोना किस बात का था, शंकरदत्त ने कहा- कमबख्त दौरे पर चला गया है।

सब चुप। दो-एक मिनट बाद भीड़ में फिर छोटे-छोटे ग्रुप बनने लगे। कुछ लोगों ने जमुहाइयों से बचने के लिए बीड़ी सिगरेट जलायी, कुछ ने तंबाकू फांकी। शंकरदत्त ने भी डिब्बा खोल कर एक पान मुंह में रखा। फिर सब मिल कर उस सड़क की ओर देखने लगे। जिधर से बस आती थी - स्टेशन हो कर आने वाली बस।

-अब और कितनी देर है?

शंकरदत्त अभी जीने पर ही थे कि दालान में खड़ी पत्नी ने जैसे उसी सवालनुमा बाहों से रास्ता रोक लिया।

-देर है। कह कर वह तेजी से भीतर घुस गये। अगल-बगल के क्वार्टरों की महिलाएं भी अपने-अपने दालानों से उन्हें ही घूर रही थीं

-बड़ी प्यास लगी है। भीतर आ कर उन्होंने यों बैठते हुए कहा, जैसे अपने टूटे हुए शरीर को सुस्ताने के लिए डाल रहे हों। पीछे-पीछे आ रही पत्नी रूकी नहीं, सीधे किचन की ओर निकल गयी। दो मिनट बाद वह पानी का गिलास ले कर लौटी।

-स्टेशन से कोई खबर आयी?

-हां, आ गयी।

-क्या?

-ट्रेन जा चुकी थी।

कई पलों तक पत्नी उन्हें खामोशी से धूरती रही फिर फंसे हुए गले से बोली - मतलब यह कि रिजवी के बाल-बच्चे आखिरी दफा मुंह देखने से भी..... शंकरदत्त ने अपनी आंखें पत्नी की ओर उठा दीं। बोले नहीं, बस देखते रहे। सारी कालोनी मे मिसेज रिजवी अगर कहीं जाती थी तो वह यही घर था सिर्फ यही घर!

-फिर? बड़ी चुप्पी के बाद एक प्रश्न हुआ।

शंकरदत्त ने खखार कर गला साफ किया, जैसे पूछते हों, फिर क्या? धीरे से बोले-खबर पहुंचा दी है मस्जिद में।

-म्युनिस्पैल्टी में?

-मस्जिद, शंकरदत्त ने जोर से कहा-म्युनिस्पैल्टी नहीं मस्जिद, दरअसल, पत्नी की म्युनिस्पैल्टी वाली बात उनके भीतर कहीं बहुत गहरे उतर गयी थी-कई-कई घावों को एक साथ उधेड़ती हुई! मुफलिसी में जिंदा रहना तो सहा जा सकता है लेकिन मरना और वह भी पराये शहर में? मान लो कहीं वह ही पराये शहर में होते तो? लेकिन शहर अपना किस तरह होता है? क्या सिर्फ जन्म लेने और दो-चार पीढ़ियों से रहे आने से ही? पराया न सही लेकिन कई बार खुद उन्हें क्या इसके अपने होने में शक नहीं होता? मान लो रिजवी की जगह वही होते? क्यों नहीं हो सकते? रिजवी ने ही कहां कल्पना ही होगी? कल वह दफ्तर आया था। रात उन्होंने उससे बात की थी। सुबह उसकी आवाज सुनी थी। वह जानते थे कि मिसेज रिजवी अपने बच्चों के साथ वतन जा रही है। उस वक्त वह एक बहुत जरूरी काम से निकले थे जब रिजवी के घर में सामने तांगा खड़ा था और स्टेशन चलने की तैयारी हो रही थी।

कोई दो घंटे बाद जब वह लौटे, तो देखा कि रिजवी के घर के सामने हंगामा मचा हुआ है। कालोनी के कई लोगों ने एक तांगेवाले को घेर लिया था और लात, घूंसे तथा जूतों से उसकी मरम्मत की जा रही थी।

शंकरदत्त झपटते हुए पहुंचे थे और वहां जो कुछ सुना, देखा और जाना वह उन पर फालिज का हमला था!

रिजवी की लाश के पास मुश्किल से एकाध आदमी थे जबकि तांगेवाले को मारने के लिए आधी कालोनी जमा हो गयी थी। वहां से निकल आने के बाद भी देर तक उन जुमलों ने पीछा नहीं छोड़ा था।

-क्यों बे, क्या नाम है तेरा?

-करीम।

-अबे मियां, किसी ने कहा था- अपनी बिरादरी वाले पर तो रहम किया होता....

शंकरदत्त जानते थे कि रिजवी के बीवी-बच्चे वतन जा रहे थे। उन्हें यह भी पता था कि स्टेशन तक छोड़ने रिजवी जाने वाला है। आगे का पता नहीं था, जाने रिजवी बच्चों को रवाना कर के ही लौटा या स्टेशन तक छोड़ कर चला आया था, थोड़ी देर बाद लोगों ने देखा था कि रिजवी से तांगेवाला आठ आने ज्यादा मांग रहा था और बुरी तरह अड़ गया था। जब तू-तू , मैं-मैं से घर के सामने एक दृश्य खड़ा होने लगा, तो रिजवी को हार माननी पड़ी थी। रिजवी ने आखिर में अठन्नी फेंक दी थी लेकिन वह गुस्से में आग-बबूला हो चुका था। लोगों ने बस इतना ही देखा था कि उसे क्रोध में चिल्लाता हुआ वह घर के अंदर दाखिल हुआ था, तांगेवाला अभी मुश्किल से सौ गज बढ़ा होगा कि मालूम हुआ वसीम रिजवी अपने घर की दीवान पर मरा पड़ा है।

शंकरदत्त जिस तेजी से लपके थे, उसी शिद्दत से बर्फ भी हो गये थे। लाशें उन्होंने कई देखी थीं लेकिन वैसा डरावना चेहरा उन्होंने इससे पहले कभी नहीं देखा था। रिजवी गुस्से में खौलता हुआ मरा था, लिहाजा उसके दोनों होंठ कस कर भिचे हुए थे, गालों की तनी हुई मांसपेशियों में दुहरी-तिहरी शलें पड़ गयी थीं और आग बबूला होती हुई उसकी खुली आंखें मर चुकने पर भी निगलती हुई और बेहद डरावनी थी।

शंकरदत्त बच्चों की तरह दहल कर हट गये थे।

-एक अठन्नी के लिए पट्ठे ने जान दे दी। कोई धीरे से कह रहा था और शंकरदत्त में इतना भी साहस नहीं था कि वह उसकी ओर देख लेते।

-वसीम, एक बार शंकरदत्त ने रिजवी से कहा था-तुम में इतना क्रोध क्यों भरा हुआ है? जानते हो, जो कुछ नहीं कर सकता वही गुस्सा करता है?

-जानता हूं।

-फिर भी ?

-शायद इसीलिए करता हूं।

-तुम्हें पता है कि तुम अकेले पड़ते जा रहे हो? एक और दफा शंकरदत्त ने रिजवी से कहा था। वह तो पाकिस्तान से युद्ध के दिन थे या किसी भंयकर दंगे के बाद का कोई मौका।

-शायद।

-और यह भी पता है कि मुसलमान तुम्हें....

-हां, यह भी पता है कि मुसलमान मुझे काफिर समझते हैं, और हिंदू यह समझते हैं कि मैं.... लेकिन क्या आदमी सिर्फ स्याह या सफेद ही होता है? क्या ऐसा नहीं होता कि दोनों के बीच कई-कई रंग घुले हों?

कई पल रूक कर शंकरदत्त ने कहा था- क्या यह जरूरी है कि जो रंग आपका भीतर से हो वह बाहर भी दिखाया जाये?

-दत्तजी, अगर यह जरूरी नहीं तो हिपाक्रेसी और ईमानदारी में क्या फर्क हुआ? रिजवी ने कहा था - कुरैशी और मुझमें फिर क्या फर्क हुआ? क्या कुरैशी और उस जैसे लोग यह सब करने के लिए काफी नहीं है।

शंकरदत्त चुप हो गये थे। रिजवी ने जैसे उन्हें याद दिला दिया था कि वह अपनी नहीं, दूसरों की आवाज में बोल रहे हैं। मानो अपने और रिजवी के इतने बरसों के संग-साथ और बदनाम दोस्ती को झुठला देना चाहते हो। क्या यह कभी मुमकिन था?

दफ्तर और कालोनी दोनों ही जगह शायद वह अकेले आदमी थे, रिजवी

के साथ उठने-बैठने ही नहीं, हमदर्द दोस्त होने के लिए बदनाम थे। आमतौर पर वसीम रिजवी सनकी, गुस्सैल और चिड़चिड़े आदमी की तरह जाना जाता था। और नतीजा यहा था कि लोग उससे या तो कटते थे या उसे अपने से काट दिया करते थे।

-अमां यार, किस सिड़ी आदमी को चिपकाये फिरते हो? दफ्तर के साथियों ने कई बार उन्हें टोका था - क्या सांप भी कभी किसी का दोस्त हो सकता है?

-सांप? उन्हें आश्चर्य हुआ था - अगर रिजवी सांप है, तो कुरैशी क्यों नहीं।

कुरैशी और रिजवी एक ही बिरादरी के होने पर और एक ही दफ्तर में काम करने के बावजूद एक-दूसरे के बिल्कुल बरअक्स थे। यही नहीं, उनमें आपस में कभी पटी भी नहीं। वैसे भी रिजवी का सबसे बड़ा निंदक कुरैशी ही था। चाय की कैंटीन हो या दफ्तर की मेज, रिजवी के बिल्कुल विपरीत कुरैशी हंसमुख, मिलनसार और यारबाश आदमी की तरह मशहूर था। हर लम्हा लतीफों और चुस्त-दुरूरत फिकरों से लैस कुरैशी गाहे-ब-गाहे अपनी जिंदादिली की मिसालें पेश करता रहता था। सामूहिक बातचीत के दौरान देश और राष्ट्रीयता उसके प्रिय विषय थे। तुम आदमी हो या मुसलमान, यह उसका ऐसा तकयाकलाम था, जिससे वह अपने हिंदू दोस्तों को खूब हंसाया करता था।

ओलंपिक टूर्नामेंट चल रहे थे और दफ्तर में कई दिनों से बड़ी सरगर्मी थी। सस्पेंस इस बात पर था कि भारत और पाकिस्तान के बीच हो रहे हाकी के खेल में कौन बाजी मार ले जाता है? कुरैशी अपना छोटा ट्रांजिस्टर लेकर दफ्तर आया करता था। और लंच-ब्रैक के अलावा और वक्तों में भी कमेंट्री सुनी जाती थी, बहसें होती थी और शर्तें बदी जाती थीं। रिजवी का यहां भी कोई मौका नहीं था।

उस दिन दफ्तर पहुंच कर शंकरदत्त सांस भी नहीं ले पाये थे कि कुरैशी मिठाई का एक दोना लेकर उनके सिर हो गया था। सारा दफ्तर मुंह मीठा कर रहा था लेकिन किस बात पर और कौन करा रहा है, यह थोड़ी देर रहस्य ही

बना रहा। रिजवी उस दिन भी देर से दफ्तर आया था। हमेशा की तरह तरह उसके आते ही चेमेगोइयां हुई थीं। थोड़ी देर खुसुर-पुसुर होती रही फिर अचानक कुरैशी, रिजवी के पास मिठाई को दोना लेकर पहुंच गया था।

-किस बात की मिठाई? स्वभावतः रिजवी ने भी पूछा था।

-आपको पता नहीं?

-जी नहीं।

-यारो, कुरैशी ने जैसी सारे दफ्तर जो संबोधित करते हुए कहा था- अब तो मान जाइए कि रिजवी साहब कितने मासूम है। बेचारे को यह भी पता नही कि ओलंपिक टूर्नामेंट में इस बार हमने पाकिस्तान को पटखनी दे दी है।

दफ्तर के लोग हंसने लगे थे।

-मिठाई कौन खिला रहा है? रिजवी ने हतप्रभ हुए बिना धीरे से पूछा।

-अमां, आपको आम खाने से मतलब है कि पेड़ गिनने से?

-दोनों से, रिजवी ने दृढ़ता से कहा था-अब फरमाइए।

रिजवी का यह रूख ऐसा था कि एक पल को दफ्तर में सकता-सा पड़ गया। स्वयं कुरैशी जैसे सहम-सा गया था लेकिन तभी पिछली मेज से आवाज आयी थी-पेड़ आपके सामने खड़ा है।

इस बार दफ्तर में गूंजने वाली हंसी ऊंची थी। एक हद तक अकारण और शायद जरूरत से ज्यादा तल्ख भी। पता नहीं वह इसकी प्रतिक्रिया थी या कुछ और, सहसा रिजवी ने मिठाई का दोना घृणापूर्वक उठा कर बाहर फेंक दिया था।

सारी कालोनी सोयी पड़ी थी, खामोश। तीन चौथाई रात बीत गयी थी कब और कैसे, पता नहीं! शंकरदत्त जाग रहे थे। किसी की मैयत में जाने का, कफन-दफन से लौटने का यह पहला अवसर नहीं था, अपने और परायों को मिला कर ऐसे बीसियों मौके आये थे लेकिन ऐसी बेचैनी पहले कभी नहीं हुई

थी–अपने जवान बेटे को फूंक आने के बाद भी नहीं। असल में वह सदमा था जबकि यह सदमे से ज्यादा बेचैनी। वसीम रिजवी का मरा हुआ चेहरा उनके भीतर कहीं बहुत गहरे पैवस्त हो गया था।

–क्या बेवकूफी है! शंकरदत्त ने मन–ही–मन झल्ला कर अपने को डांटा और करवट बदल ली।

उन्होंने नींद लाने की आखिर कोशिश के तहत फिर दृढ़ता पूर्वक आंखें मूंद लीं लेकिन दूसरे ही क्षण घबरा कर आंखें खोलनी पड़ीं। रिजवी का चेहरा बुरी तरह तंग करता था। वह फिर, और फिर, बड़ी देर तक यही करते रहे लेकिन बंद आंखों में न तो नींद आ रही थी। और न खुली आंखों में.....

शानी

जन्म 16 मई 1933, जगदलपुर - मध्य प्रदेश। निधन 10-2-1955 प्रारंभिक रचनाओं में आंचलिकता है लेकिन प्रतिगामता नहीं। प्रगतिशील चिंतन एवं गतिशील लेखन। अनेक कहानी संग्रह और उपन्यास प्रकाशित। पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त कई भाषाओं में अनुवाद।

अँधेरा

रमाकान्त

अस्पताल के जनरल वार्ड के बाहरवाले कमरे में अपने एक दोस्त के साथ बैठा हूँ। तेज ठंड पड़ रही है। कमरे में हम लोगों के सिवा कोई नहीं हैं। हमें अभी डॉक्टर के आने का इन्तज़ार करना है। यह इन्तज़ार बुरी तरह खल रहा है मुझे। अस्पताल में मुझे कोई काम नहीं है। मेरे उस दोस्त के हाथ की हड्डी उतर गयी है, उसी की एक्स–रे रिपोर्ट डाक्टर को दिखानी है। हम काफी जल्दी आ गये हैं।

बेतरह ऊब कर मैं खिड़की से बाहर देखने लगता हूँ - आसमान गाढ़े कुहरे से भरा है, धूप बिलकुल नहीं है। अस्पताल के अहाते में लगे ताड़ की तरह दीखने वाले साइकस के दरख्त कुहरे में डूबे–डूबे से लग रहे हैं। ठंड़ी हवा के झोंके के साथ मेरी निगाह फिर कमरे में लौट आती है और अपनी बगलवाली खाली दीवाल की ओर देखने लगता हूँ।

ठंड से मेरे दोस्त की तकलीफ बढ़ गयी है। चोटवाला हाथ पट्टी के बावजूद जैसे ठिठुर गया है और उसकी उँगलियों के नाखून तक नीले पड़ रहे हैं। शायद उसका हाथ बुरी तरह टीस भी रहा है। अपने दूसरे हाथ को हथेली से वह अपनी ठिठुरी हथेली ज़ोर से दबा लेता है। दर्द के मारे उसक होंठ बुरी तरह फैले हैं, दाँत एक–दूसरे पर कस कर बैठे हैं फिर भी हल्की सिसकारी उसके मुँह से निकल जाती है।

मैं अपने दोस्त के बारे में अधिक देरी तक नहीं सोच सकता। अस्पताल